अतीत के प्रेत

बसंत त्रिपाठी

अतीत के प्रेत

चिंतन के एक विषय के रूप में निर्वासन जितना भी आकर्षक लगता हो , अनुभव के स्तर पर यह उतना ही भयावह है। निर्वासन नाम है उस टूटन का , जो किसी मनुष्य और उसकी जन्मभूमि , उसके अपने स्व और इस स्व के वास्तविक के बीच घटित होता है। यह एक ऐसा घाव है जो कभी भी भर नहीं पाता , इसके अंतर्तम में छिपी व्यथा से पार पाना असंभव होता है - एडवर्ड सईद।

(मैं जब तक उठता, कहानी शुरू हो चुकी थी। मुझे कहानी के बीच में ही घुसना पड़ा। रात का हैंगओवर अभी बचा था इसलिए कहानी के साथ चलते-चलते मैं अचानक

पिछड़ जाता था लेकिन फिर दौड़कर कहानी को थाम लेता था, इसलिए आपको कहानी कुछ टूटी-टूटी लग सकती है।)

वह एक दोमंजिला बड़ा-सा मकान था। बाहरी दीवार कभी सफेद रही होगी। लेकिन अब पूरी तरह बदरंग थी। दीवारों पर जगह-जगह सूखी हुई काई के काले पड़ चुके धब्बे थे और उन धब्बों से अव्यवस्था टपक-टपककर आस-पास फैल गई थी, जिससे मकान और भी अधिक उदास लगता था। उस भुतहा-से मकान में इस वक्त तीन अतीत के प्रेत गहरी बहस में डूबे हुए थे।

मकान डी.जे. का था, डी.जे. यानी प्रेत नं. **1**, उम्र सत्तर से कम; दूसरा आर.पी., प्रेत नं. **2**, तिरसठ-चौसठ के आस-पास और तीसरा के. के., प्रेत नं. **3**, अभी-अभी **60** का हुआ था और सरकार ने उसे तोहफे के रूप में हमेशा के लिए छुट्टी दे दी थी।

(मैं जब कहानी में घुसा, डी.जे. ने काफी के दो मग उखड़ी पॉलिश वाली टेबिल पर रखे। मग रखने के अंदाज से ही लग रहा था कि वह उत्तेजित और नाराज है। मैं यहीं से कहानी में घुसा, करीब **11-12** बजे के आस-पास, जबकि कहानी को शुरू हुए **3-4** घंटे बीत चुके थे।)

काफी के मग रखने बल्कि पटकने के बाद डी.जे. किचन से अपना मग भी ले आया और बेंत की कुर्सी में बैठ गया। वह इस तरह बैठा हुआ था मानो अभी उछलकर रोशनदान पर चढ़ जाएगा और वहीं से ऐलानिया अंदाज में कहने लगेगा। डी.जे. हालाँकि रोशनदान पर नहीं चढ़ा लेकिन चिढ़कर बोला -

'तो तुम दोनों का खयाल ये है कि साइंस ने बीसवीं शताब्दी में अमीरों की गुलामी और तबाही और चमत्कारिक नुस्खों की वेश्यावृत्ति के अलावा कुछ भी ईजाद नहीं किया, क्यों यही कहना चाहते थे न तुम दोनों?'

'डी.जे., तुम कितने बद्दिमाग हो, और कितने वाहियात अंदाज में हमारी बातों को दुहराते हो, बिलकुल तोड़-मरोड़कर, टुकड़े-टुकड़े करके... जबकि तुम ये अच्छी तरह जानते हो कि न तो मैंने और न ही के.के. ने इस तरह की कोई बात कही है। यह तुम्हारी ज्यादती है जो हमारी कही हुई बातों का अर्थ अपने सोचे हुए के अनुसार निकाल लेते हो! तुम हमेशा ही साइंस के पक्ष में खड़े रहने वाले हो, सोचकर देखो, क्या साइंस तुम्हें इस तरह के अतार्किक निष्कर्षों को निकालने की मंजूरी देता है? तुम्हारे निष्कर्ष टोटली मिस्टिरीयस एनालिसिस के उदाहरण हैं।' आर.पी. ने अपेक्षाकृत शांत लहजे में कहा।

'आर.पी. तुम फिलोसोफिकल लेंग्वेज का जबरन इस्तेमाल मत करो। मेरी सीधी-सादी और सहज प्रतिक्रिया को तुम ऐसे फिलोसाफिकल इक्वेशन में कन्वर्ट कर देते हो कि पता ही नहीं चलता - आखिर मैंने कहा ही क्या था! मिस्टीरियस बातें तो तुम खुद करते हो!' डी.जे. ने अपनी उत्तेजना को थोड़ा कम करते हुए लेकिन दृढ़ता के साथ अपनी बात कही।

'माई डियर जेंटलमेन, यस बोथ ऑफ यू, क्या तुम्हें मालूम है कि तुम दोनों एक-दूसरे पर एक जैसे आरोप लगा रहे हो! कम-से-कम संडे की इस सुबह, सुबह नहीं बल्कि दोपहर, आरोप तो अलग-अलग लगाओ। दोनों एक जैसे हथियार से लड़ोगे तो साली यह लड़ाई कितनी देर चलेगी? लगता है घिसे रिकार्ड की तरह दोनों की सुई एक ही जगह पर अटक गई है - तू मेरे ऊपर फाल्स आरोप लगा रहा है... तू मेरे ऊपर फाल्स आरोप लगा रहा है... अरे इससे थोड़ा तो आगे बढ़ो यार।' के.के. ने मजा लेते हुए कहा।

'के.के. सरकार ने तुम्हें काम से अलग कर दिया है लेकिन दो लोगों को लड़वाकर अपनी सरकारी अफसरशाही की ऐय्याशी का भूत तुम्हारे सिर से अभी तक उतरा नहीं है। यदि मजा लेने का इतना ही शौक है तो मैं तुम्हें कुछ मजे की जगहें बता देता हूँ, नहीं तो कुछ ठीक-ठीक सोचो।" डी.जे. ने अपने चिपरिचित अंदाज में कहा।

'सोचेगा कहाँ से, सरकारी फाईलों में कलम घिसते-घिसते इस साले के दिमाग में भी फफोले पड़ गए हैं। हाँ डी.जे., तुम इत्मीनान से अपनी बात कहो, हम वादा करते हैं कि तुम्हें रोकेंगे नहीं।' आर.पी. ने कहा।

'मैं यह कह रहा था कि..., डी.जे. ने मुँह में काफी का एक भरपूट घूँट भरा, 'इनसानी रिश्ते भी साइंस की थियरी से अलग नहीं हैं। हमारे साथ मुश्किल यह होती है कि साइंस पढ़ते हुए हम थियरी और लैब के उल्टे-सीधे प्रयोगों को दुहराने और रटे-रटाये, पिटे-पिटाये निष्कर्षों को पाने के लिए इतने बेचैन होते हैं कि उसकी मूल चिंता और उसके विराट दर्शन के भीतर मानवीय इकाइयों की व्यवहारगत विशिष्टताओं को समझने की कोशिश ही नहीं करते। सोचकर देखो कि साइंस, जब तक हमने पढ़ा, क्या प्रैक्टिकल कॉपी और किताबों के अलावा हमारे लिए कोई इंडिपेंडेंट मैटर रहा है? बहुत पीछे न जाएँ, इसी शताब्दी को दखें, साइंस ने क्या कुछ नहीं किया! मेंढक की तरह उठी हुई कारें और धीमी गति से चलने वाले दुपहिये वाहन तेज रफ्तार गाड़ियों में बदल गए। विद्युत चुंबकीय तरंगों ने ब्रह्मांड के अधिकांश रहस्यों को सुलझा लिया और जैसे-जैसे रहस्य सुलझते गए, वैसे-वैसे दुनिया का बर्ताव, यदि तुम दुनिया को एक रहस्यमय इकाई मानते हो, तो कहें, कि आदमी का बर्ताव बदल गया। बीहड़ किले

की तरह लगती कई बीमारियों की हैसियत मामूली सर्दी-जुकाम से अधिक की नहीं रह गई। मनुष्य के रहन-सहन, उसके सोचने-समझने के तरीकों में बदलाव हुए। क्या तीन सौ साल पहले कोई सोच सकता था कि हजारों किलोमीटर दूर खड़े किसी व्यक्ति को वह देख सकता है या उससे बातें कर सकता है?'

'बिलकुल नहीं सोच सकता था, सोच तो यह भी नहीं सकता था कि हजारों आदमी कुछ ही मिनटों में तड़प कर मर सकते हैं। सोच तो यह नहीं सकता था कि परमाणु बम नामक महान खोज से आने वाली कई पीढ़ियाँ अपंग पैदा हो सकती हैं, सोच तो यह भी नहीं सकता था कि...'

'अव्यवस्था, मिसमैनेजमेंट के लिए तुम साइंस को जिम्मेदार नहीं ठहरा सकते। यदि नियंत्रण के अभाव में कोई बच्चा बिगड़ता है तो क्या इसके लिए बच्चे को दोषी माना जाएगा?'

'खैर, डी.जे. इस पर हम फिर कभी बात कर लेंगे, फिलहाल तुम्हारी किसी भी बात से हम इनकार नहीं कर रहे हैं लेकिन तुम्हारी बात मानवीय रिश्तों के रहस्यों को साइंस से मिलाने की बात से शुरू हुई थी, एम आई करेक्ट?'

'हाँ, मैं उसी पर आ रहा हूँ। एक मिनट रुको।' डी.जे. अपनी कॉफी खत्म कर भीतर गया। थोड़ी देर बाद जब वह लौटा तो उसके हाथ में दो लाल रंग के चुंबक थे। उसने दोनों चुंबक टेबिल पर रखो - 'देखो यह चुंबक का उत्तरी ध्रुव है और यह दक्षिणी। उत्तरी ध्रुव के सामने दूसरे चुंबक का दक्षिणी ध्रुव लाओ तो पहला चुंबक दूसरे को बहुत तेजी से खींचता है।' दूसरा चुंबक पहले से चिपक गया था। 'अब उत्तरी ध्रुव के सामने दूसरे चुंबक के उत्तरी ध्रुव को ही रखें। यह दूसरे चुंबक को पीछे ढकेलता है, देखो इस तरह।' दूसरा चुंबक पीछे जा रहा था। 'दोनों चुंबक के बीच की यह जो दूरी है, जिस पर दोनों काम करते हैं यानी आकर्षण और विकर्षण, यही इन चुंबकों की शक्ति है। चुंबक की चुंबकीय शक्ति दूसरी वस्तु की प्रकृति और उसकी दूरी पर निर्भर करती है।'

'डी.जे., इसे फिजिक्स की सामान्य किताबों से भी समझा जा सकता है। तुम्हारा मुद्दा था साइंस थियरी से मानवीय स्वभावों की संगति। क्या आकर्षण और विकर्षण इतने ही यांत्रिक तरीके से मनुष्य के भीतर काम करते हैं? तुम यही कहना चाहते हो न! और एग्जेक्ट यही कहना चाहते हो तो पहलियाँ बुझाये बिना अपनी बात साबित करो या फिर मान लो कि हम हमेशा की तरह बातें कर रहे हैं और तुम कोई नई और अनोखी बात नहीं कहने जा रहे हो।' आर.पी. ने थोड़ा झुँझलाते हुए कहा।

लेकिन डी.जे. आज अपनी ही रौ में था - 'एक चुंबक के भीतर उसके अणुओं की विशिष्ट स्थिति ही चुंबक की शक्ति का निर्धारण करती है और यह शक्ति निश्चित दूरी पर ही काम करती है। ठीक इसी तरह मनुष्य की शक्ति भी उसके विशिष्ट व्यवहारों का कुल योग होती है। जब तक दो मनुष्य एक-दूसरे के प्रभाव क्षेत्र में नहीं आते तब तक न तो वे आकर्षित होते हैं और न ही विकर्षित। मनुष्य चूँकि अपने ऐंद्रिक तंत्रों का कुल योग होता है इसलिए उसके आकर्षित या विकर्षित होने की क्षमता उसकी ऐंद्रिय क्षमता के कुल योग के बराबर होती है। इंग्लैड या ऑस्ट्रेलिया या मिस्र में रहने वाले किसी व्यक्ति के सुख-दुख से हम कोई वास्ता नहीं रखते तो इसका अर्थ यह है कि हम उसके विशिष्ट प्रभाव से दूर हैं। अब मान लो कि अमरीका में रहनेवाले किसी व्यक्ति के दुख से हम प्रभावित हो रहे हैं तो इसका मतलब हुआ कि हम अपने श्रवणतंत्र, दृश्यतंत्र या अपनी स्मृति और अनुभव के कारण उसके विशिष्ट चुंबकीय प्रभाव में आ चुके हैं। जिसे हम उदासीनता कहते हैं, वह दरअसल निश्चित दूरी के बाहर दो पिंडों की स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह तो हुई प्रत्यक्ष प्रभाव की बात, जिसे हम अपनी खुली आँखों से देख पाते हैं, लेकिन इसके साथ, यह भी सच है कि ब्रह्मांड की हर घटना, दूसरी घटना को प्रभावित करती है। केवल निश्चित दूरी के भीतर होने पर ही यह प्रभाव दिखाई पड़ता है अन्यथा नहीं। ठीक वैसे ही जैसे सैकड़ों प्रकाशवर्ष की दूरी पर किसी नक्षत्र में रहनेवाले विस्फोट का पृथ्वी पर प्रभाव नगण्य होता है...।'

'क्या तुमने ठान रखा है कि आज अपनी बात पर नहीं आओगे, तो चलो, हम सब मिलकर एक लंबी उबासी लें।" और के.के. ने मुँह फाड़ दिया।

(इस कहानी को लिपिबद्ध करते हुए मैं भी ऊब रहा था। मैं थ्रिलर फिल्म देखना चाहता था जबकि डी.जे. नामक यह प्रेत नं. **1**, नसीरुद्दीन शाह की फिल्मों की तरह धीरे-धीरे चल रहा था। खैर, मैंने प्रेत नं. **2** और **3** से आँख बचाकर प्रेत नं. **1** को भूमिका कम और कहानी ज्यादा कवर करने का इशारा कर दिया और इस बीच लघुशंका से निवृत्त होकर भी आ गया।)

(सॉरी, मुझे आने में देर हो गई कहानी शुरू हो चुकी थी। डी. जे. कह रहा था**...)**

'जिस चुंबक के चुंबकीय प्रभाव को समझाने की मैं कोशिश कर रहा हूँ मनुष्य की प्रकृति भी उससे अलग नहीं है। अपनी बात को साबित करने के लिए मैं अपनी ही कथा सुनाता हूँ जिस पर गुजरे चालीस वर्षों से मैंने रहस्य का परदा डाल रखा है।

'...मैं तब शिमला रिसर्च इंस्टिट्यूट में सीनियर रिसर्च फैलो था और आइंस्टीन के खगोलीय समीकरणों के आधार पर नक्षत्रों की दूरी की गणितीय व्याख्या में उलझा हुआ था। मेरे लिए तब दूरी का केवल एक ही मानक था - प्रकाशवर्ष; और यह मानक मुझ पर इतना हावी था कि मैं किचन और ड्राइंग रुम के बीच की दूरी को भी प्रकाशवर्ष से नापता **3*10-16** प्रकाशवर्ष **(3** मीटर**)** और मेरे घर से इंस्टिटयूट की दूरी थी 10-**13** प्रकाशवर्ष **(1** कि**.**मी**.)** तुम लोग कह सकते हो कि प्रकाशवर्ष मेरे लिए प्रामाणिक मानक था। यानी मेरे बौरा जाने की शुरुआत हो चुकी थी। मुझे दो व्यक्ति दो नक्षत्र की तरह लगते। शिमला में रहते हुए कई पहाड़ी चोटियों के बीच की दूरी को दूरबीन की सहायता से मैं प्रकाशवर्ष में कन्वर्ट कर चुका था।

तुम लोग बेशक इसे मेरा पागलपन कह सकते हो, लेकिन वह पागलपन नहीं था बल्कि जुनून था, फिजिक्स का जूनून; और मैं तुम लोगों को बताऊँ कि यह वक्ती जुनून नहीं था। रुचियाँ जब भौतिक परिस्थितियों का अतिक्रमण कर एक निश्चित दिशा में दौड़ने लगती है तो वह जुनून में बदल जाती हैं। मैं ब्रह्मांड की गणितीय व्याख्या को लेकर जुनूनी हो गया था!

मेरा पागलपन बढ़ता जा रहा था। मेरी उम्र तब 26 से अधिक नहीं होगी लेकिन मुझे एहसास ही नहीं था कि मैं 26 का हूँ। कई बार माल रोड के किनारे पत्थर की बेंच पर जब सैलानियों को बैठे हुए देखता तो मुझे लगता कि दुनिया में कितना कुछ अजीब है! जब कोई ग्रीन वैली या खुफरी की सुंदरता पर मुग्ध होकर हाल ही में पत्नी बनी स्त्री को चूमता और गुजरते हुए मुझे 'पुच्च' की ध्वनि सुनाई पड़ती तो मैं कैल्कुलेशन करने लगता कि इस घटना के होने के कितनी देर बाद मैं उसे सुन पाया या यदि मैं दृश्य को देखता तो हिसाब करने लगता कि दृश्य के होने और देखने के बीच का अंतराल एक सेकेंड का कितना अरबवाँ हिस्सा है! मैं पूरी तरह आइंस्टीन की थियरी में घुस चुका था।

उन दिनों हमारे इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर डॉ. मुखर्जी थे, बेहद शांत और जिज्ञासु, बला के खुबसूरत। मेरी जानकारी में वे पहले आदमी थे जो अपने अधपके बालों पर मेंहदी लगाया करते थे। उनके चेहरे पर एक मासूम किस्म की लाली खेलती रहती थी और बालों का रंग सुबह के सूरज से मिलता था। उनकी खूबसूरती का आलम तो यह था कि शिमला में आने वाली खूबसूरत से खूबसूरत लड़की की खूबसूरती भी उनके आगे पानी भरती थी। सुबह-सुबह जब वे इन्स्टीट्यूट के लिए पैदल निकलते थे तो लगता था कि सूरज अभी-अभी उनके बालों से निकल आसमान की ओर चला गया है! वे हमारे इन्स्टिट्यूट की जान थे लेकिन मेरी श्रद्धा का कारण कुछ और था। युद्ध के

दिनों में वे वैश्विक युद्धविरोधी आंदोलन में शामिल थे और आइंस्टीन के साथ वे कई जलसों में शिरकत कर चुके थे।

एक दिन मैं लैब में नक्षत्रों के स्पैक्ट्रम का अध्ययन कर रहा था कि चपरासी ने आकर सूचना दी - डॉ. मुखर्जी ने मुझे बुलाया है।

मैं अपना काम छोड़कर उनकी केबिन में घुसा।

डॉ. मुखर्जी किसी शोधपत्र में डूबे हुए थे। उन्होंने मुझे बैठने का इशारा किया। थोड़ी देर बाद शोधपत्र खत्म कर उन्होंने एक सिगरेट जलाई और ढेर सारा धुआँ उगलते हुए कहा -

'तुम्हें जल्द ही गोवा जाना होगा।'

'गोवा!' मैं आश्चर्य से भर उठा।

डॉ. मुखर्जी ने आगे कहा - 'गोवा में मेरे एक अजीज दोस्त हैं - डॉ. डेविड फर्नांडिस। उनके पास आइस्टीन के अंतिम दिनों के काम की कुछ प्रतिलिपियाँ हैं, जिन पर उनका रिसर्च पेपर इस जर्नल में छपा है। हमारे इन्स्टीट्यूट में उन पेपर्स की प्रतिलिपियाँ होनी चाहिए इसलिए तुम जाकर उन्हें ले आओ। मैं डॉ. फर्नांडिस के लिए एक चिट्ठी लिखे देता हूँ।'

डॉ. मुखर्जी ने सिगरेट का एक लंबा कश खींचा, फिर अपनी आँखों में थोड़ी शरारत भर कर बोले - 'इन पहाड़ों में रहते हुए तुमने कभी गोवा की कल्पना भी न की होगी। जाओ, समुद्र के करीब जाओ, लहरों के आसपास कुछ समय बिताओ, ये तुम्हारे लिए भी पॉजिटिव चेंज होगा और तुम अपने आगे के काम के लिए थोड़ा फ्रेश भी हो जाओगे! मैं तुम्हारी छुट्टियाँ ऑफिशियल टूर के रूप में मंजूर किए देता हूँ लेकिन तुम्हें जल्दी निकलना होगा, मुमकिन हो तो कल ही।'

'गोवा!' मैंने सुन रखा था कि समुद्र की लहरों पर बसा गोवा पुर्तगाली और कोंकणी कल्चर के मिश्रण का एक अनूठा इलाका है। वहाँ लोगों की साँसों से भी समुद्र की आवाज झरती है और अभी 4-5 साल पहले ही वह भारत में मिलाया गया है। लेकिन मुझे इन सब बातों में दिलचस्पी न थी। मेरी चिलचस्पी तो उन पेपर्स में थी जो डॉ. डेविड के पास थे। मेरे भीतर आइंस्टीन की लिखावट देखने की इच्छा मचल रही थी।

वो ठंड का मौसम था। मुझे गोवा के क्लाइमेट का अंदाजा नहीं था सो मैंने दो बड़े बैग में अपना सामान पैक किया। एक में किताबें, कपड़े, पैन, कॉपी वगैरह और दूसरे में गरम कपड़े। लेकिन दिल्ली पार करते-करते मुझे दूसरा बैग बोझ लगने लगा और मुंबई पहुँचते-पहुँचते तो उसे फेंक देने की इच्छा हुई।

मुंबई पहुँचकर मैं गोवा जाने वाली स्टीमर में सवार हो गया। मैं जिंदगी में पहली बार इतना पानी देख रहा था। चारों ओर पानी ही पानी था। गहरा, नीला और शांत। दूर किसी बिंदु पर ध्यान केंद्रित करो तो पता ही नहीं चलता कि जहाज चल रहा है! मैं समुद्र के बीच शिमला के पहाड़ों को याद करता रहा और सोचता रहा पहाड़ों में दो बाल्टी पानी भी एक मुश्किल किले की तरह होता है, जबकि यहाँ तो पानी के अलावा कुछ है ही नहीं। पानी से मुझे डर लगने लगा और गोवा पहुँचने तक मैं अपनी केबिन में दुबका रहा। बाहर निकलने की मेरी हिम्मत नहीं हुई।

गोवा पहुँचकर मैं सीधे डॉ. डेविड फर्नांडिस के घर गया और उन्हें डॉ. मुखर्जी द्वारा लिखा हुआ पत्र सौंप दिया। डॉ. फर्नांडिस ऊँचे-पूरे, गोरे-चिट्टे और सौम्य से दिखनेवाले खूबसूरत इनसान थे। पत्र पूरा पढ़ने के बाद उन्होंने कहा कि अभी यहाँ क्रिसमस की छुट्टियाँ चल रही हैं। लगभग दो सप्ताह बाद इंस्टीट्यूट खुलेगा तभी मुझे आइंस्टीन के काम की प्रतिलिपियाँ मिल सकती हैं। उन्होंने यह भी कहा कि मैं चाहूँ तो उनके घर में ही रुक सकता हूँ या इंस्टीट्यूट के गेस्ट हाउस में या फिर होटल में।

मैंने होटल में ही ठहरने का फैसला किया और डॉ. फर्नांडिस ने समुद्र के तट पर एक अच्छे-से होटल में कमरे की व्यवस्था कर दी।

उस होटल की बाल्कनी और खिड़की समुद्र की ओर खुलती थी। जिस समुद्र से डरकर जहाज में मैं अपने केबिन में दुबका रहा था, अब वह ठीक मेरे सामने था - नीला, चमकीला और मानो उबलता हुआ समुद्र। बाल्कनी में बैठे हुए जब मैं तट की ओर से आती हुई लहरों को देखता तो लगता कि वे आते-आते होटल के कमरे तक पहुँच जाएँगी। जब वे लहरें तट से टकरातीं तो मैं अपने गालों पर उनकी छींटें महसूस करता!

दिसंबर का महीना था। क्रिसमस बिलकुल करीब था और पूरा गोवा झूम रहा था। मोहक संगीत का शोर शाम के झुटपुटे अँधेरे से शुरू हो जाता और देर रात तक चलता रहता। समुद्र में दूर-दूर तक रोशनी से नहाई कश्तियाँ, बड़े-बड़े जहाज और उनमें से

उठता हुआ हल्का-हल्का संगीत... जैसे लहरों ने संगीत के कपड़े पहन लिए हों... और कपड़ों की सरसराहट की तरह किनारों पर फिसलती हुई मोहक तानें।

मेरे लिए यह किसी अनोखे और चमत्कारिक लोक से कम न था। मैं पहाड़ों में रहने वाला आदमी हूँ। शाम होते ही पहाड़ चुप्पी की चादर ओढ़े सो जाते हैं। खिड़कियों से कहीं-कहीं रोशनी के बिंदु हिलते हुए कंदील की तरह दिखाई पड़ते हैं लेकिन उस शहर का मिजाज बिलकुल अलग था। होटल की पहली रात तो मैं बहुत बेचैन रहा। संगीत के मद्धिम होने के इंतजार में आधी रात होते-होते लहरों ने मुझे अपनी गिरफ्त में ले लिया। आँख बंद करता तो लगता कि मैं लहरों के ऊपर किसी तख्त पर लेटा हुआ हूँ। अचानक पलंग हिलता हुआ-सा जान पड़ता और मैं घबराकर आँखें खोल देता!

सुबह होते-होते मुझे नींद लग गई और जब उठा तो दस बज चुके थे। मेरे पास कोई काम नहीं था। मैं तैयार होकर होटल से निकल गया। साइंस का जुनून बैग के भीतर ही बंद था और सच पूछो तो मुझे उसकी याद भी नहीं आई। लेकिन पहली रात का यह फायदा जरूर हुआ कि समुद्र का खौफ एक सुखद और चमत्कारी रोमांच में बदल गया।

रात का संगीतमय शोर अब घंटे की ध्वनियों में बदल चुका था। रह रहकर गिरिजाघरों से प्रार्थनाओं और घंटियों के स्वर उठते और दूर-दूर तक फैल जाते। मैं बेवजह घूम रहा था। फिलहाल तो घूमना ही मेरे लिए एक काम था। इतने में एक बेकरी के बाहर मुझे 'वह' दिखाई पड़ी - 'वह' यानी रोज़ी। गोवा में विदेशी सैलानियों से अधिक सुंदर मुझे वहाँ की स्थानीय लड़कियाँ लग रही थीं। पहाड़ों में लाल और गोरे रंग की लड़कियों को देखते-देखते मैं बड़ा हुआ था इसलिए इस रंग की लड़कियाँ मुझे बहुत स्वाभाविक लगती थीं। लेकिन साँवली खूबसूरती का मंजर मैं पहली बार देख रहा था और रोज़ी तो साँवली सूबसूरती का एक सँवलाया चाँद थी! चाँद यदि साँवले रंग का होता तो जैसा दिखता, रोज़ी का चेहरा बिलकुल वैसा ही था - गोवा की साँवली खूबसूरती का एक बेशकीमती रत्न !

यह पहली बार का चुंबकीय आकर्षण था। मैं चुंबकीय क्षेत्र में प्रवेश कर चुका था, बिलकुल इस तरह...

और डी.जे. फिर चुंबक के एक ध्रुव को दूसरे ध्रुव की ओर ले जाना शुरू किया। निश्चित दूरी से आगे बढ़ने पर दूसरा चुंबक हिलने-डुलने लगा, हालाँकि वह पहले चुंबक से एकदम चिपक नहीं गया। दोनों के बीच एक प्रतिरोधी शक्ति काम कर रही थी।

'हाँ, मैं इसे प्रतिरोधी शक्ति ही कहूँगा, डी.जे. ने कहा, 'एक निश्चित दिशा में गति यानी वेग विरुद्ध प्रभावी शक्तियाँ यानी हमारे संस्कार, हमारा समाज क्या प्रतिरोधी शक्ति की तरह काम नहीं करता?' डी.जे. ने अचानक प्रश्न किया। के.के. या आर.पी. के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था। वे चुप रहे। डी.जे. अपनी बात पर लौट आया, यानी दूसरे चुंबक की हरकत पर।

'हम एक खुले रेस्तराँ में बैठे चाय पी रहे थे। अब तक वह मेरे बारे में सबकुछ जान चुकी थी और मैं भी उसके बारे में, कि वह एक प्राइमरी स्कूल में संगीत की शिक्षिका है कि उसने बचपने में अपनी माँ को खो दिया था कि वह अपने पिता, जो एक पब्लिक लाइब्रेरी में लाइब्रेरियन हैं, की इकलौती बेटी है और उन्हें बहुत प्यार करती है, कि उसे केक और मछली बहुत पसंद हैं कि वह मछली बहुत अच्छा बना लेती है, कि पियानो बजाना उसे अच्छा लगता है, कि समुद्री लहरों को टकराते देखना उसका प्रिय शगल है, और सप्ताह में कम-से-कम एक बार, और अधिक की कोई सीमा नहीं, वह समुद्र में तर भीगती है, कि... कि... उसे मुझसे प्यार हो गया है। यह अंतिम बात उसने क्रिसमस के बीतने के बाद पहली जनवरी की रात नाच के हंगामे में धीरे-से मेरे कानों में कहा था और देर तक गोवाइन संगीत में झूमती रही थी। आकाशगंगा में विस्फोट से अभी-अभी जनमे एक नए नक्षत्र की तरह।

मैं भी चुंबकीय कंपास की सुई की तरह उसकी उपस्थिति से अपने भीतर कंपन महसूस कर रहा था। मुझे दुनिया में रोज़ी से अधिक अपना कोई नहीं जान पड़ता था। मैं और रोज़ी... रोज़ी और मैं।"

फिर डी.जे. चुंबक को और अधिक करीब ले गया। दूसरे चुंबक में फिर हरकत हुई और वह पहले चुंबक से चिपक गया।

इसके कुछ देर बाद तक चुप्पी छाई रही। डी.जे. ने इस बीच एक सिगरेट सुलगा ली। उसका धुआँ धीरे-धीरे कमरे में फैलता रहा। केवल कश खींचने की एक हल्की-सी आवाज आती और फिर धुआँ उगलने की। सिगरेट से धुआँ एक सफेद लकीर बनकर उठता और थोड़ी देर बाद गायब हो जाता। बगल के कमरे में पंखे की घिर्र-घिर्र... ठीक लहरों की आवाज की तरह... आर.पी. और के.के. को लगा कि वे गोवा पहुँच गए हैं!

सिगरेट पीने तक चुप्पी छाई रही। डी.जे. ने जलती ठूँठ को ऐश ट्रे में मसला नहीं, जो कि वह हमेशा करता था। उसने फिर कहना शुरू किया -

'जनवरी के सात दिन बीत चुके थे यानी प्यार के जाहिर होने के सात दिन! मैं रोज़ी के सीने में सिर रखकर सोया हुआ था। मुझे लग रहा था कि यह उसका सीना नहीं बल्कि समुद्र में तैरती एक कश्ती है, हल्की-हल्की डगमगाती हुई एक साँवली कश्ती और मैं उस पर अकेला सवार हूँ! किसी शरीर के करीब होने का वह मेरा पहला अनुभव था। उसके शरीर में नमक का स्वाद और मछली की गंध बसी थी। वह भीगकर सीधे होटल के कमरे में आ गई थी और उसने अपना तंग ब्लाऊज उतार दिया था। मैंने उसके होंठ चूमे और लगा कि समुद्री जल को अँजुरी में भरकर चख लिया है। होंठ नमकीन थे और बेहद तपे हुए और..."

डी.जे. अपनी बात अधूरी छोड़ दी। आगे की बात कहने का कोई अर्थ नहीं था। वह जैसे किसी बीते हुए क्षणों की गलियों में भटक रहा था। कुछ देर भटकने के बाद वह फिर अपने कमरे में लौट आया और कहने लगा - 'प्यार के जाहिर होने के दसवें दिन डॉ. फर्नांडिस मुझे ढूँढ़ते हुए होटल के कमरे में आए तो मैं एक लंबी नींद से जागा।

'क्यों मिस्टर धनंजय, लगता है गोवा आपको बहा ले गया।'

डॉ. फर्नांडिस की बातों में हल्का-सा व्यंग्य था। गोवा इतना खुला हुआ इलाका था कि बातें वहाँ छुपती नहीं थीं। वहाँ पहाड़ों की तरह का रहस्य नहीं था और न ही चुप्पी। उन्होंने मुझे आइंस्टीन के काम की प्रतिलिपियाँ थमा दीं और हर तरह की मदद का आश्वासन देकर चले गए।

इन प्रतिलिपियों को प्राप्त करने के साथ-साथ मेरा काम खत्म हो चुका था, वह काम जिसके लिए मैं गोवा गया था, लेकिन काम क्या वाकई खत्म हो गया था? कुछ देर तक मैं, सन्न खड़ा उन प्रतिलिपियों को देखता रहा, जो पेपर मेरे लिए एक जुनून थे, वे अब मेरे हाथों में थे लेकिन मन में एक अजीब-सी दहशत थी। अचानक खाली हो जाने का एहसास भीतर भर गया था। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ! और मैं शाम का इंतजार करने लगा।

वह शाम उस दिन बहुत देर से आई।

हम समुद्र के तट में पत्थर की बेंच पर बैठे थे। रोज़ी ने धीमे से अपना हाथ मेरी हथेलियों से छुड़ा लिया -

'तो तुम्हें अब लौटना होगा?' रोज़ी ने पूछा।

फिर एक लंबी चुप्पी... हमारी चुप्पी के बीच लहरों की आवाजें फैलती रहीं। रोज़ी, जो अक्सर चिड़िया की तरह फुदकती रहती थी, आज शांत थी। उसका शांत हो जाना मुझे खल रहा था। लगता था कि समुद्र अचानक शांत हो गया है। तटों की ओर उसने लहरें फेंकना बंद कर दिया है!

'रोज़ी क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम भी मेरे साथ चलो, मेरी पत्नी बनकर!' रोज़ी के चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कराहट आकर लौट गई। समुद्री तट से लौटती लहर की तरह। इस बार उसका रास्ता किसी ने नहीं रोका था।

'तुम्हें मेरे फादर से बात करनी होगी।'

'फिर चलो, अभी बात कर लेते हैं।' मैंने तुरंत उठते हुए कहा। रोज़ी खिलखिला उठी। समुद्र में फिर लहरें उठने लगी। उसकी छींटों से मेरा चेहरा फिर भीगने लगा। कई तरह से अनोखे सपनों की लहरियाँ टकराकर मेरे चेहरे में छींटों से मेरा चेहरा फिर भीगने लगा। कई तरह से अनोखे सपनों की लहरियाँ आपस में टकराकर मेरे चेहरे पर छींटे उड़ा रही थीं। उस नमीं और फुहारों में भीगना, मुझे बहुत अच्छा लग रहा था।

'तो मिस्टर धनंजय, आइंस्टीन की नक्षत्रीय गणना के स्कॉलर और शिमला रिसर्च इन्स्टीट्यूट के सीनियर फैलो, अपनी शादी की बात खुद ही करेंगे!' रोज़ी ने मुझे छेड़ते हुए कहा।

'क्यों इसमें हर्ज ही क्या है?'

'और तुम्हारे माँ-बाप?'

'उन्हें भी बाद में बता दिया जाएगा लेकिन फिलहाल नहीं। इसलिए नहीं कि मैं छुपाना चाहता हूँ या उनके इनकार से डरता हूँ। सिर्फ इसलिए कि उन्हें चिट्ठी लिखने और जवाब आने में कम-से कम एक महीना लग जाएगा। वे लोग शिमला से कुछ दूरी पर एक पहाड़ी गाँव में रहते हैं। वहाँ चिट्ठी पहुँचने में कम-से कम पंद्रह दिन तो लगेंगे ही। जबकि मुझे तुरंत लौटना है, इसी सप्ताह।'

'तो तुम रजामंदी लेकर लौट आओ, फिर साथ रहना शुरू करते हैं।'

'रोजी मैं कोई रिस्क लेना नहीं चाहता।' मैंने शांत लहले में लेकिन थोड़ा चिढ़ाते हुए कहा, 'तुम समुद्र की बेटी हो और समुद्र में लहरें उठती ही रहती हैं, मान लो तुम्हारे भीतर फिर कोई नई लहर पैदा हो गई तो मेरा क्या होगा?'

'तो मिस्टर धनंजय मेरे बारे में ऐसा सोचते हैं, मुझे कैद करना चाहते हैं। लुक मिस्टर धनंजय, लहरों को आज तक कोई भी कैद करके नहीं रख पाया। तुम चाहे जितनी कोशिशें कर लो जब मेरा मन करेगा फिसलती हुई निकल जाऊँगी।' रोज़ी ने जिस तरह आँख मटकाते हुए कहा था उससे मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा - 'मजाक मत करो रोज़ी, आई एम सीरियस।'

'आई एम आल्सो सीरियस।' और रोज़ी ने वहीं मेरे गालों को चूम लिया। फिर समुद्र की ओर चली गई। थोड़ी देर बाद लौटी तो भीगी हुई थी, जनवरी की रात में भीगी हुई।

'अब चलो, तुम्हारे कमरे में कपड़े सुखाने होंगे, घर ऐसे ही जाऊँगी तो बीमार पड़ जाऊँगी।' रोज़ी ने शरारती अंदाज में कहा।

उस रात दस बज तक कमरे में रोज़ी के कपड़े सूखते रहे।

दूसरे दिन सुबह-सुबह मैं डॉ. डेविड फर्नांडिस के साथ रोज़ी के घर में था। डॉ. डेविड ही मेरे लोकल गार्जियन थे - माँ, पिता, बहन, भाई सभी कुछ एक साथ। उन्होंने कुछ इस ढंग से मेरी पैरवी की कि रोज़ी के पिता इनकार ही न कर सके और उसके ठीक सात दिन बाद मैं रोज़ी के साथ लौट रहा था।

मुंबई में जहाज से उतरने के बाद जब हम समुद्री तट से दूर जा रहे थे तब पहली बार रोज़ी को बिछोह का एहसास हुआ। वह अपने पियानो, स्कूल और पिता से तो पहले ही बिछड़ चुकी थी और अब समुद्र से भी दूर जा रही थी। उसके मन में बार-बार एक हूक-सी उठती - क्या पता अब कभी समुद्र देख भी पाऊँगी या नहीं! बिछोह का दुख गलकर उसकी आँखों से बहने लगा। शिमला पहुँचते तक रोज़ी की आँखें भीगी ही रहीं।

शादी के बाद शुरुआती दो महीने तो आँखों ही आँखों में बीत गए। इस बीच मेरे घर वाले भी मिलने आए। मेरी शादी को लेकर कोई हंगामा नहीं हुआ। उन्होंने रोजी को अपना लिया। हम पहाड़ी लोगों की यही तो खूबी होती है। पहाड़ों का जीवन बहुत कठिन होता है। जीने के साधन बहुत थोड़े होते हैं, इसलिए हम जल्दी ही संतुष्ट हो जाते हैं। हम सबके भीतर संतोष की गुनगुनी धूप फैल चुकी थी। हम सब - यानी माँ, बाबा, बहन, डॉ. मुखर्जी मेरे दोस्त यार और खुद मैं। लेकिन रोज़ी? रोज़ी के भीतर कुछ दरकने लगा था। उसकी ठीक-ठीक आहट मुझे दो महीने बाद ही हुई, जब मैंने उसे बाँहों में भरने की कोशिश की, वह मछली की तरह फिसलती हुई निकल गई।

'क्या बात है रोज़ी, तुम खुश नहीं हो?'

रोज़ी ने एक ठंडी साँस भरी और फिर मेरी बाँहों के घेरे में आ गई। एक ऐसी मछली की तरह, जिसे एक्वेरियम से आजाद कर दिया गया हो लेकिन वह फिर एक्वेरियम में लौट आए! उस रात उसकी भीगी आँखों के बावजूद मैंने दम भर कर प्यार किया। उसकी देह में अब भी एक ताजा मछली की गंध थी लेकिन होंठों का नमक अब मद्धिम पड़ने लगा था। उस पर अब सेब का स्वाद चढ़ने लगा था लेकिन नमक अपनी स्वाद को बचाने के लिए जूझ रहा था!

मैं धीरे-धीरे अपनी स्वाभाविक जिंदगी में लौटने लगा यानी आइंस्टीन की गणितीय व्याख्या की दुनिया में। और इसका स्पष्ट एहसास मुझे तब हुआ जब एक रात मैंने उसके निप्पलों को देखकर कहा, पता है इन दोनों उड़ने को आतुर भौरों के बीच की दूरी कितनी है- **6 * 10 -18** प्रकाशवर्ष **(6 से.मी.)**।

रोज़ी के चेहरे पर मुस्कराहट की एक हल्की-सी रेखा दिखाई पड़ी। थोड़ी देर तक वह रेखा उसके चेहरे पर खेलती रही और फिर गायब हो गई।

रोज़ी के भीतर की दरार बढ़ती जा रही थी। उसके शरीर का नमक जैसे-जैसे कम हो रहा था, उसके भीतर नमक की प्यास बढ़ने लगी थी। उसकी नींद में भी अब नमक के स्वप्न उबलते और दिनों-दिन काले होकर उसकी आँखों के नीचे जमते जाते।

डॉ. मुखर्जी जब भी घर आते, रोज़ी की कमजोरी की ओर ध्यान दिलाते और मुझे अच्छी-खासी डाँट पिलाते। मैं रोज़ी का दुख जानना चाहता था लेकिन वह कुछ भी कहाँ कहती थी। वह तो लगातार दूर होती जा रही थी।

चुंबक के ध्रुव अब पलट गए थे।

तो क्या मेरा और रोज़ी का आकर्षण क्षणिक आवेग का परिणाम था? मैं यकीनन कह सकता हूँ कि ऐसा नहीं था। ऐसा होता तो रोज़ी आज भी मुझे इतनी याद न होती।' डी.जे. ने कहा और फिर एक सिगारेट सुलगा ली।

'एक दिन शाम को जब मैं इंस्टीट्यूट से लौटा तो देखा कि दरवाजा खुला हुआ है। मैं दबे पाँव घर के भीतर गया। रोज़ी कमरे में नहीं थी। वह बाथरूम में थी। बाल्टी के पानी को घुटनों के बल बैठकर निहारती हुई। पानी जब शांत हो जाता तो वह अपनी हथेली से पानी में तरंगें पैदा कर देती और उसे चुपचाप निहारने लगती। मैं लगभग आधे घंटे तक रोज़ी को देखता रहा, फिर धीरे-से उसके कंधे पर हाथ रखे। रोज़ी चौंकी

जैसे नींद से जाग गई हो। उसने थकी आवाज में चहकने की बनावटी कोशिश करते हुए कहा - 'अरे तुम कब आ गए? आज इतनी जल्दी?'

मैंने अपने हाथों का सहारा देकर उसे उठाया। वह अपने कमजोर कदमों को घसीटती और लड़खड़ाती हुई सोफे में लेट गई।

'तुम्हें क्या हो गया है रोज़ी? तुम इतनी चुप-चुप क्यों रहने लगी हो? क्या तुम्हें मेरे साथ रहना अब अच्छा नहीं लगता और तुम बाथरूम में क्या कर रही थी?' अपनी आशंकाओं से जनमे कई सवाल मैंने रोज़ी से एक ही साँस में पूछ लिए थे।

'ऐसी बात नहीं है डियर, तुम तो मेरे सबकुछ हो, लेकिन...' रोज़ी ने एक गहरी साँस ली, 'मैं लहरें देख रही थी, उसे छूने की कोशिश कर रही थी...' और वह फफक-फफककर रो पड़ी। उसके रोने में भी समुद्र की आवाज थी। बारिश में भीगते हुए समुद्र की आवाज!

उस दिन रोज ने पहली बार अपना दुख कहा - 'धनंजय, मैं गोवा में रहते हुए बर्फीले पहाड़ों की कल्पनाएँ किया करती थी कि वे कैसे दिखते होंगे? बहुत पहले मेरे रिश्ते के एक अंकल पहाड़ों में छुट्टियाँ बिताने आए थे और लौटते हुए रोरिख की हिमालय सीरीज की बहुत-सी पेंटिंग्स के पिक्चर पोस्टकार्ड साथ लेकर गए थे और उनमें से कुछ मुझे प्रेजेंट किया था। उन चित्रों को देखते हुए मेरे भीतर पहाड़ों को लेकर अजब-सा रोमांच घर कर गया। उन चित्रों में बैंगनी, नीले, भूरे और गुलाबी के गाढ़े रंग पहाड़ों पर चढ़े थे, बीच-बीच में झाँकता हुआ-सा सफेद रंग। मैंने कितनी-कितनी बार अपनी उँगलियों की पोरों से उन रंगो को छुआ था! धीरे-धीरे वे रंग मेरे भीतर जमते चले गए। मुझे उन रंगों के सपने आने लगे। उन सपनों में एक चेहरा दिखाई पड़ता जो पहाड़ की तरह था। पहाड़ के रंग अचानक फैले हुए हाथ बन जाते और मुझे अपनी ओर बुलाते। मैं घबराकर उठ जाती। लेकिन रंगों का वह आमंत्रण मुझे अच्छा लगता। फिर धीरे-धीरे वह आमंत्रण मेरी इच्छा बनता गया। गोवा में जब तुम पहली बार मुझसे बेकरी के बाहर मिले और बिना किसी औपचारिकता के चाय का न्योता दे डाला तो मैं तुम्हारी ओर खिंचती चली गई। बचपन की वे तस्वीरें मेरे भीतर जिंदा होने लगी थीं और मैं तुमसे प्यार करने लगी।

'लेकिन... तस्वीरों में और जीवन में फर्क होता है, होता है न? मैं उन तस्वीरों को लहरों के संगीत के बीच देखती थी। रंगों के उस आमंत्रण की पृष्ठभूमि में समुद्र की आवाजें तैरती रहती थीं। उन तस्वीरों को देखते हुए या सपने देखते हुए मुझे कुछ भी छूट जाने का एहसास नहीं होता था। लेकिन अब, जबकि मैं उन्हीं तस्वीरों के देश में रह रही हूँ,

लगता है जैसे बहुत कुछ छूट गया है। मैं हर चीज को हिलते हुए यानी हरकत में देखने की आदी रही हूँ। चुप्पी जैसे शब्द मेरी डिक्शनरी में थे ही नहीं, लेकिन यहाँ सबकुछ चुप-चुप है। पहाड़, पेड़ और यहाँ तक कि लोग भी; जहाँ नजर फेरती हूँ वहाँ एक गतिहीन नजारा दिखाई पड़ता है। न लहरें, न मछलियों की उछलकूद, न हिलती हुई कश्तियाँ और न संगीत का शोर! सबकुछ पर जैसे एक रहस्यमय चुप्पी का परदा पड़ा हुआ है। ऐसा मत समझो कि मैं तुमसे ऊब गई हूँ... लेकिन... लगता है मेरा जहाज तैरते-तैरते बर्फ के दलदल में फँस गया है और लगातार डूबता जा रहा है... मैं बर्फ में धँसती जा रही हूँ धनंजय, प्लीज, मुझे बचा लो, किसी भी तरह बचा लो...'

रोज़ी लगातार रोए जा रही थी। मैंने कहा - 'रोज़ी, कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम मुझसे अलग होना चाहती हो?'

'नहीं धनंजय, प्लीज, ऐसा मत कहो, क्या मैं ऐसा सोच भी सकती हूँ?' रोजी ने तड़पते हुए कहा, 'लेकिन तुम चिंता मत करो, धीरे-धीरे मैं इन पहाड़ों की, इन चुप्पियों की आदी हो जाऊँगी, तुम भरोसा करते हो न मुझ पर?' रोज़ी ने मुस्कराने की कोशिश की।

लेकिन रोज़ी आदी नहीं हो पाई। वह लगातार बीमार होती गई। उस सँवलाए चाँद की रोशनी लगातार मद्धिम पड़ती गई। इस बीच मैंने बहुत कोशिश की कि उसे कुछ दिनों के लिए गोवा वापिस भेज दूँ, लेकिन उसने अकेले जाने से साफ मना कर दिया था।

पहाड़ों में गर्मी आकर लौट गई। गर्मियों के दिनों के कारण सैलानियों का जो हुजूम शिमला पर टूट पड़ा था, वह फिर उसे चुप्पियों के हवाले कर अपनी दुनिया में लौट गया था। बारिश में पहाड़ों पर थोड़ी हलचल हुई। पानी के बरसने या रिसने या पत्थरों से निकलकर बहते पानी का शोर जब रोज़ी के कानों में पड़ता तो वह बहुत खुश हो जाती। यदि वह कमजोर नहीं हो गई होती तो जरूर नाचने लगती। लेकिन उसका शरीर साथ नहीं देता था। वह बिस्तर पर पड़े-पड़े ही अपनी खुशी को चेहरे से व्यक्त करती।

बारिश के बीतते-बीतते पहाड़ फिर अकेले हो गए।

मैं अब अधिक-से-अधिक रोज़ी के करीब रहने लगा था। रोज़ी की आँखों के नीचे का काला घेरा अधिक गहरा हो गया था और वह लगातार फैलता जा रहा था। उसकी आवाज बुझती जा रही थी। पहाड़ों में सर्दियाँ शुरू हो चुकी थीं। मैं जब भी इंस्टीट्यूट से लौटता, देखता कि रोजी छींटदार स्कर्ट और गाढ़े रंग का भड़कीला पतला-सा ब्लाऊज

पहने होती। रजाई-कंबल बिलकुल नहीं ओढ़ती। मैं जब उसे गर्म कपड़े पहनाने या रजाई ओढ़ाने की कोशिश करता तो वह मिन्नतें करने लगतीं - 'धनंजय, प्लीज मुझे इन कपड़ों को पहने रहने दो, मुझे बिलकुल ठंड नहीं लग रही है।' मैं देखता कि वह काँप रही है फिर भी उसक चेहरे पर संतोष की लकीरें हैं!

मुझे याद है वे नवंबर के आखिरी दिन थे जब मैंने रोज़ी को चूमते हुए कहा - 'रोज़ी, मेरी छुट्टियाँ मंजूर हो गई हैं, हम अपनी पहली मेरिज एनीवर्सरी गोवा में ही मनाएँगे।'

रोज़ी का चेहरा अचानक खिल गया। बादलों के पीछे से जैसे अचानक चाँद निकल आया हो! उसने कहा - 'धनंजय, मैं एक बार लहरों को देखना चाहती हूँ, समुद्री मछली देखना चाहती हूँ, समुद्र की सतह पर बिछी धूप देखना चाहती हूँ, एक बार, अंतिम बार... इसके बाद तुम जैसे चाहोगे वैसे रहूँगी। बिलकुल तुम्हारी तरह... तुम्हारे साथ...'

'रोज़ी, तुम ऐसा क्यों कह रही हो? हम बार-बार समुद्र देखेंगे, बार-बार उसके करीब जाएँगे।' मैंने तड़पकर कहा।

और 15 दिसंबर को हम फिर गोवा के लिए निकल पड़े। रोज़ी ने शर्त रखी थी कि हम उसी होटल में रुकेंगे, उन्हीं क्षणों को फिर जिएँगे, फिर-फिर जिएँगे।

मुंबई में लगभग साल भर बाद उसने जब समुद्र देखा तो मारे खुशी के उछल पड़ी। वह अचानक मेरा हाथ छुड़ाकर उसकी ओर दौड़ पड़ी। नहीं मालूम उसके पैरों में इतनी ताकत कहाँ से आ गई थी। वह अँजुरी में पानी भरकर अपने हलक में डाल लेती। मैं उसे समझाता रहा - 'रोज़ी, हम महीने भर तुम्हारे समुद्र के साथ रहेंगे। तुम थोड़ा ठीक हो जाओ फिर खूब उछलकूद करना, अभी नहीं।' लेकिन तब तक रोज़ी पूरी तरह भीग चुकी थी।

जहाज की केबिन में उसने कपड़े बदले और पूरी यात्रा डेक में खड़े-खड़े पूरी की। जब थक जाती तो वहीं रेलिंग का सहारा लेकर बैठ जाती।

साल भर बाद मेरे लिए एक बार फिर गोवा। वही उबलता, चमकता, मेरे भीतर बेचैनी जगाता और मेरी नींद में अपनी आवाज के साथ घुसपैठ करता समुद्र। वही संगीत और उमंग से झूमते हुए शहर। वही चर्च और वही घंटियाँ और वही प्रार्थनाएँ। उस शहर

का मिजाज तो कुछ भी नहीं बदला था! लेकिन उस शहर की लड़की, जो साल भर बाद वहाँ लौटी थी, काफी बदल चुकी थी।

हम उसी होटल के उसी कमरे में रुके, जहाँ मैंने पहली बार रोज़ी के शरीर के नमक को अपने होठों से छुआ था। रोज़ी को जानने वाले उसे पहचान ही न पाते। उसके पिता आए। अपनी इकलौती लड़की का हाल देखकर बहुत दुखी हुए। वे उसे घर ले जाना चाहते थे लेकिन रोज़ी तैयार नहीं हुई। नहीं मालूम, ऐसी अटूट जिद वह कहाँ से पा गई थी! वह चर्च जाती और शाम को हम उसी पत्थर की बेंच पर बैठते। यदि बेंच में पहले से ही लोग बैठे हों तो हम उसके किनारे बैठकर खाली होने का इंतजार करते। इस बीच रोज़ी एक दिन अपने स्कूल भी गई और लौटकर वह बहुत खुश थी। उसने पिता के घर पियानो भी बजाया और पिता फेनी पीकर देर तक नाचते रहे। हम दिन में उसकी जानी-पहचानी जगहों में जाते और रात को होटल के कमरे में लौट आते।

तो क्या रोज़ी ठीक हो रही थी? यकीनन नहीं। उसके चेहरे की चमक लौट आई थी लेकिन शरीर थक चुका था।

एक शाम हम पत्थर की बेंच पर बैठे थे। नया साल आ चुका था। शाम का लाल-लाल सूरज समुद्र की गोद में छुप जाने की तैयारी कर रहा था। रोज़ी मेरी हथेलियों को थामे बैठी थी। उसने काँपती हुई धीमी आवाज में कहा - 'धनंजय, मुझे माफ कर दो, अब शायद मैं तुम्हारा साथ नहीं दे पाऊँगी। मैं एक समुद्री मछली हूँ जो ऊँचाइयों से अपना मिलान नहीं कर पाई। तुम्हारे पहाड़ बहुत खूबसूरत हैं लेकिन मेरे लिए तो मेरा समुद्र ही सबकुछ है। मैं एक समुद्री पौधे की तरह हूँ जो उखड़कर दूसरी जमीन में जीना चाहता था। तुम ये नहीं कह सकते कि मैंने कोशिश नहीं की... लेकिन मैं ऐसा कर नहीं पाई। तुम्हें याद होगा, यहीं इसी बेंच पर एक दिन मैंने कहा था कि लहरों का जब मन होगा वे फिसलती हुई निकल जाएँगी। तब मुझे पता नहीं था कि एक साल के भीतर मुझे अपने कहे को साबित करना होगा... मैं जिंदगी की शुरुआत में ही तुम्हारा साथ छोड़े जा रही हूँ, हो सके तो मुझे माफ कर देना।'

डी.जे. गहरी हताशा में उठकर टहलने लगा - 'वो रोज़ी के अंतिम शब्द थे। उसके बाद रोज़ी पूरी तरह चुप हो गई और दो दिन बाद हमें छोड़कर हमेशा के लिए चली गई। वो हमारी पहली सालगिरह के बाद वाला दिन था। समुद्र से प्यार करने वाली उस लड़की को समुद्र के पास वाले कब्रिस्तान में दफना दिया गया।'

(डी.जे. ने अपना शरीर ढीला छोड़ते हुए ये बात कही। कमरा थोड़ी देर तक शांत रहा, बिलकुल शांत। मैंने कल्पना नहीं की थी कि अतीत के इन प्रेतों का संबंध इतने दुखद

अतीत से है। मैं वहाँ से भाग जाना चाहता था लेकिन एक तो, कहानी में देर से घुसने का अपराध-बोध और दूसरा, क्या मैं अपने पात्रों को यूँ ही अकेला छोड़ कर भाग जाऊँ? अपने दौर की राजनीति, समाज, संस्कृति की हलचलों से कटे लेकिन संवेदनशील ये पात्र, क्या उन्हें उनके ही हाल पर छोड़ दिया जाए? और... बात शुरू कहाँ से हुई थी? विज्ञान के रहस्यों से मानवीय व्यवहारों के रहस्यों की संगति बैठाने की बात से, जो अब तक अधूरी थी, सो मैं वहीं मौजूद रहा।)

डी.जे. कह रहा था - 'गोवा से मैं अकेला ही लौटा। लौटकर मैंने सीनियर रिसर्च फैलो के पद से इस्तीफा दे दिया। डॉ. मुखर्जी ने मुझे बहुत समझाया। भविष्य की योजनाओं की ओर ध्यान भी दिलाया लेकिन मैं निर्णय कर चुका था। शिमला में या पहाड़ों में रहना मेरे लिए अब मुमकिन नहीं था। मैं मैदानी इलाके में आ गया, यानी इस शहर में, जो पहाड़ और समुद्र से बराबर की दूरी पर है। मुझे बार-बार लगता था, और अब भी लगता है, कि रोज़ी ने बैलेंस न बनाने की जिद में अपनी जान दी है। यहाँ रहते हुए मैं साबित करुँगा कि निर्णय लेकर जीवन जिया जा सकता है... मैं एक चुंबक ही तो हूँ जिसने परिस्थिति बदलने के बावजूद अपना गुण-धर्म नहीं छोड़ा... और... और...' डी.जे. कहते-कहते रुक गया।

के.के. धीरे से उठा। उसने डी.जे. के कंधे पर हाथ रखे और कहा - 'नहीं डी.जे., तुम चुंबक नहीं हो, डी.जे. हो, मि. धनंजय हमारे सबसे प्यारे और अजीज दोस्त..." और वह फूट-फूटकर रोने लगा। आर.पी. भी दोनों से लिपट गया।

उस बड़े से कमरे से देर तक केवल सिसकियों और हिचकियों की आवाजें आती रहीं।

(मैं लौटने लगा। फिलहाल मेरे कान शराब के खुलते ढक्कन की आवाज सुनने के लिए बेचैन हो रहे थे। मैं संतुष्ट था कि मैं एक चुंबक की अंतःकथा को लिपिबद्ध नहीं कर रहा था। मूल प्रश्न यहाँ फिर रह जाता है कि क्या विज्ञान का सत्य, मानवीय व्यवहारों की सत्ता से पृथक है**?** शायद हाँ**...** शायद नहीं**...** पता नही**!)**

https://www.hindiadda.com/atit-ke-pret/